REVIEW OF RESEARCH
IMPACT FACTOR : 5.7631(UIF) UGC APPROVED JOURNAL NO. 48514 ISSN: 2249-894X
VOLUME - 7 | ISSUE - 12 | SEPTEMBER - 2018

इकबाल के काव्य में देशप्रेम

डॉ. विनयकुमार एस. चौधरी
यशवंतराव चव्हाण महाविद्यालय, तुलजापुर (महाराष्ट्र).

''सारे जहां से अच्छा हिंदोस्तां हमारा
हम बुलबुले हैं इसकी ये गुलिस्तां हमारा''[1]

ऐसे अजरामर काव्य लिखने वाले मोहम्मद इकबाल केवल कवि नहीं बल्कि गीत,गजलें, रूबाइयां तथा शेर लिखनेवाले जानेमाने हरफनमौला साहित्यकार थे। उर्दू साहित्य में इकबाल का स्थान रवींद्रनाथ टैगोर के समान है। वे जहां एक ओर चिंतनपरक और सुफियाना शायरी के लिए मशहूर हैं, वहीं दूसरी ओर देशभक्ति तथा राष्ट्रप्रेम, सर्वधर्म समभाव, प्रकृति चित्रण आदि को भी अपनी शायरी का विषय बनाया है। प्रगतिशील शायरी का झंडा सबसे पहले उन्हीं ने उठाया जो बाद में अनेक शायरों में पुष्पित एवं पल्लवित हुआ।

''हजारों साल नर्गिस अपनी बेनूरी पे रोती है
बडी मुश्किल से होता है चमन में दीदावर पैदा''[2]

इकबाल का यह शेर संसार के अन्य महापुरूषों की तरह, जिन्होंने मनुष्य तथा मनुष्य की महानता के गीत गाए, तथा उसे पतन की दलदल से निकालकर आत्मविश्वास, आत्मसम्मान तथा कर्म एवं संग्राम के पथ पर लगाने का प्रयास किया, स्वयं इकबाल पर भी ठीक बैठता है। हजारों साल का दीर्घ विराम न सही, लेकिन इसमें संदेह नहीं कि 'दीदावर' बडी मुश्किल से पैदा होता है, और जब भी वह पैदा होता है दीर्घ विरामों की टूटी शृंखलाएं जुड जाती है।

उर्दू और फारसी शायरी के चमन का यह दीदावर 1875 में पंजाब स्यालकोट में पैदा हुआ। पुरखे कश्मीरी ब्राम्हण थे जिन्होंने तीन सौ वर्ष पूर्व इस्लाम धर्म ग्रहण कर लिया था और कश्मीर से निकलकर पंजाब में आ बसे थे। इकबाल ने उर्दू, फारसी, अरबी और अंग्रेजी की उच्च शिक्षा ली। उन दिनों राष्ट्रीय एकता और राष्ट्र–प्रेम की आवश्यकता के वशीभूत हिंदू और मुसलमान नेता अपने इतिहास का संपरीक्षण कर रहे थे। लोकमान्य तिलक ने अपना नया कर्मदर्शन गीता और वेदांत से निकाला तो सर सय्यद, अमीर अली तथा बाद में इकबाल ने कुरान की नवीन व्याख्या की। ऐसे समय में इकबाल जैसा शायर क्षेत्र में आता है जिसके हाथों न केवल अपूर्ण रेखाचित्रें में रंग भरा गया बल्कि उर्दू शायरी क्षेत्र में आता है जिसके हाथों न केवल अपूर्ण रेखाचित्रों में रंग भरा गया बल्कि उर्दू शायरी धरती से उठकर आकाश तक जा पहुंची। निःसंदेह उर्दू भाषा ने गालिब के अतिरिक्त अभी तक इकबाल से बडा शायर उत्पन्न नहीं किया। बैरिस्टर शेख अब्दुल कादिर का कथन काफी दिलचस्प है–''गालिब को उर्दू और फारसी शायरी से जो इश्क था उसने उसकी आत्म को स्वर्ग में जाकर भी चैन नहीं लेने दिया और मजबूर किया कि वह फिर किसी इंसानी जिस्म में पहुंचकर, शायरी के चमन की सिंचाई करें, और उसने पंजाब के एक गोशे मे स्यालंकोट कहते हैं, दोबारा जन्म लिया और मोहम्मद इकबाल नाम पाया''।[3]

विदेश से लौटकर इकबाल स्थाई रूप से लाहौर में रहने लगे। कुछ समय तक प्रोफेसरी करने के बाद हमेशा के लिए नौकरी छोड दी और बैरिस्टरी करने लगे। इसकाल में उन्होंने उर्दू की बजाय फारसी में अधिक लिखा। फारसी को उर्दू भाषा के स्थान पर विचार अभिव्यक्ति का माध्यम बनाने का कारण यह था कि ज्यों–ज्यों दर्शन शास्त्र आदि विधाओं का उनका अध्ययन गहन होता गया और उन्हें गूढ विचारों के प्रकटीकरण की आवश्यकता अनुभव हुई तो उन्होंने देखा कि, उर्दू भाषा का शब्द भंडार फारसी के मुकाबले में बहुत कम है। कुछ लोगों का मत यह है कि उर्दू के स्थान पर फारसी को अपना माध्यम बनाने में यह भावना निहित थी कि अब वे केवल भारत के लिए नहीं, संसारभर के मुसलमानों के लिए शेर कहना चाहते थे। कारण कुछ भी हो, वास्तविकता यह है कि, फारसी भाषा में शेर कहने से उनका यश भारत से निकलकर न केवल ईरान, अफगानिस्तान, टर्की, और मिश्र तक पहुंचा, बल्कि 'असरारे–खदी' (अहंभाव के रहस्य) पुस्तक की रचना और डॉक्टर निकल्सन के उसके अंग्रेजी अनुवाद से तो पुरे यूरोप और अमरीका की नजरें इस महान भारतीय कवि की ओर उठ गई और कदाचित इससे प्रभावित होकर अंग्रेजी सरकार ने उन्हें 'सर' की श्रेष्ठ उपाधि प्रदान की।

इकबाल की शायरी का प्रारंभ देश प्रेम तथा साम्राज्य विरोध की भावना से हुआ। भाषा कोई मूर्ति नहीं है जिसकी पूजा की जाए, बल्कि विचारों की अभिव्यक्ति का एक साधन है। इन्हीं विचारों तथा दृष्टिकोणों पर उन्होंने अपनी शायरी तथा देशभक्ति की नींव रखी। आजादी के पूर्व जनमानस में क्रांति की चेतना भर दी–

'वतन की फिक्र कर नादां! मुसीबत आने वाली है
तेरी बर्बादियों के मश्वरे हैं आसमानों में
न समझोगे तो मिट जाओगे ऐ हिंदोस्तां वालों
तुम्हारी दास्तां तक भी न होगी दास्तानों मे'।[4]

ऐसी देशप्रेम में डूबी हुयी तथा भारत की पराधिनता और दरिद्रता पर खून के आंसू रूलानेवाली नज्मों की रचना की। भारत के पर्वतों, गाती हुई नदियों, लहलहाते हुए पुष्प कुंजों और देशप्रेम के प्रकाश से जगमगाते हुए धरती आकाश का पुजारी बनकर उन्होंने नानक और चिश्ती, राम और रामतीर्थ का गुणगाण किया और अबोध बालकों तक के मुंह में यह प्रार्थना डाली–

'हो मेरे दम से युं ही मेरे वतन की जीनत
जिस तरह फूल से होती है चमन की जीनत।'[5]

हिंदुस्थान की आजादी एकता और अखंडता के लिए जान की बाजी लगाने वाले एक तरफ तो अंग्रेजो के नीतिनुसार धर्म पर लडनेवाले दूसरी तरफ। एक ही देश में विपरित अवस्था से जीने वाले भारतीयों पर प्रहार करते इकबाल लिखते है–

'मजहब नहीं सिखाता आपस में बैर रखना
हिंदी हैं हम, वतन हैं हिंदोस्तां हमारा।'[6]

इकबाल को आगे बढने और बढते चले जाने की, सितारों के आगे और जहान देखने की उमंग और उत्सुकता उत्पन्न हुई और यहीं से उनकी शायरी में वह वेग, सौंदर्य, प्रेरणा और दर्शन संबंधी गहनता पैदा हुई जो उससे पहले की उर्दू शायरी की और विशेष रूप से प्रगतिशील शायरी की कल्पना तक नहीं कर सकते । यें इकबाल ही थे जिन्होंने सबसे पहले इंकिबाल (क्रांति) का प्रयोग राजनीतिक तथा सामाजिक परिवर्तन के अर्थों में किया और उर्दू शायरी को क्रांति का वस्तु–विषय दिया। पूंजीपति और मजदूर, जमींदार और किसान, स्वामी और सेवक, श्रध्दा और अंधश्रध्दा आदि विषय पर सबसे पहले इकबाल ने ही कलम उठाई

'पत्थर की मुरतों में समझा है तू खुदा है
खाके–वतन का मुझको हर जर्रा देवता है।'[7]

दर्शनिकों का मत है कि मनुष्य को अपना अहंभाव मिटा देना चाहिए क्योंकि केवल इसी अवस्था में उसकी आत्मा शांति और मोक्ष प्राप्त कर सकती है। परिणामस्वरूप जिसने भी इस प्रकार के विचारों को अंगीकार किया वह अकर्मण्य तथा शिथिल हो गया। इकबाल यदि साधारण मस्तिष्क के व्यक्ति होते तो अधिक से अधिक अपनी संस्कृति के पतन पर आर्तनाद करके मौन हो जाते, या भक्ति की छाया में शरण ले लेते, लेकिन इतिहास ने उनके लिए उच्च स्थान नियत कर रखा था। वे उस जीर्ण तथा पुरातन पथ पर नहीं चले। बल्कि समस्त मानवजाति को प्रेम पथ पर ले चले। जीवन क्षणिक है पर प्रेम अमर है। मनुष्य इस संसार से कब निकलेगा यह पता नहीं है–

'तेरी महफिल भी गई, चाहने वाले भी गये
शब की आहें भी गई, सुबह के नाले भी गये
दिल तुझे दे भी गये, अपना सिला ले भी गये
आके बैठे भी न थे और निकाले भी गये।'[8]

अंग्रजों के बाद भी हिंदुस्तान में गुलाम लोग थे। उनपर दिन दहाडे जुल्म करते थे कहीं पूंजीपति को कहीं साहुकार। लोगों को प्रार्थना तथा नमाज पढना भी मुश्किल हो गया था। सर इकबाल के मन में कसक उठती थी–वे लिखते है–

'शान आंखो में न जचती थी जहांदारों की
कलमा पढते थे हम छांव में तलवारों की।'[9]

युध्द, गरीबी, सांप्रदायिकता, बटवारा आदि कई कारणों से आम जनता भयभीत थी। आपसी ताल मेल नहीं था। एक दूसरे को शक की नजर से देखते थे। ऐसे में किसी की महबूबा मर गई किसी की मारी गई तो किसी की बिछड गई, रहीं सिर्फ खोखली यादें इकबाल इस पर बढिया तरीके से लिखते है–

'इश्क कुछ महबूब के मरने से मर जाता नहीं
रूह में गम बनके रहता है मगर जाता नहीं
मरने वाले मरते हैं लेकिन फना होते नहीं
ये हकीकत में कभी हमसे जुदा होते नहीं।'[10]

इकबाल ने अपने चिंतन को तर्क के स्थान पर काव्य का लिबास पहनाया है, इसलिए किसी विचारक कवि की जीवन उदभावना को समझना और दूसरों को समझाना आसान काम नहीं है। फिर भी कवि की हैसियत से इकबाल का पद इतना उँचा है कि उनके चिंतन पर कोई आलोचना उनकी कला के जादू को कम नहीं कर सकती। इकबाल के मतानुसार प्रकृति के हाथों में कोई निर्जीव मोहरा नहीं, वह प्रकृति को बदल सकता है और अपने अहंभाव के नशे से उन्मत्त होकर भगवान के मुकाबले में अपनी श्रेष्ठता जतलाने में भी संकोच नही करता। फारसी की एक नज्म 'खुदा और इंसान' के कुछ टुकडे इस तरह–खुदा इंसान से–

'मैने मिट्टी और पानी से एक संसार बनाया
तूने मिश्र, तर्की, ईरान और तातार बना लिए।
मैंने धरती की छाती से लोहा उत्पन्न किया
तूने उससे तीर, खंजर, तलवारें और नेजे ढाल लिए।
तूने हरी शाखाएँ काट डाली और फैलते हुए पेड तोड गिराए
गाते हुए पक्षियों के लिए तूने पिंजरा बना डाला।'[11]

इंसान खुदा से कहता है–

'तूने, ऐ मेरे मालिक! श्रात बनाई, मैंने दीये जलाए
तूने मिट्टी उत्पन्न की, मैंने उससे प्याले बनाए
तूने धरती को वन, पर्वत और मस्त्रस्थली प्रदान किए
मैंने उनमें रंगीन फूल खिलाए, हंसती हुई वाटिकाएं सजाई
मैं विष से औषधि बनाता हूं और पत्थर से आईना
ऐ मालिक! सच सच बता !तू बडा है या मैं !'[12]

फारसी और उर्दू शायरी के चमन का यह दीदावर जिसकी दृष्टि से चमन का कोई कोना, कोई फूल, कोई कांटा न बच सका, जो शायर भी था और दार्शनिक भी, जिसके यहाँ ताप भी है और मस्ती भी, बुध्दि तथा अनुराग की अनंत छेडछाड का वर्णन भी और सौंदर्य के चमत्कारो का चित्रण भी, जिसने प्राचीन तथा अर्वाचीन दर्शनशास्त्र हिंदू और मुसलमान के तमाम पहलू, संसार की विभिन्न सभ्यताओं की जीवन व्यवस्था नैतिक सिध्दांत, संस्कृति की नियमावली, व्यक्तिगत तथा सामूहिक व्यवहार के ढंग, राजनीतिक प्रवृत्तियों आदि विषयों को 'शेर' के वस्त्र पहनाए और सृष्टि के गूढ भेदो को बुलंदी पर पहुंचाने का यथा संभव प्रयत्न किया, उर्दू तथा फारसी भाषाओं में कई महान कलाकृतियों की संपत्ति छोडकर 21 अप्रैल 1938 में इस संसार से उठ गया। लेकिन खुदा भी तकदीर के मामले में इस बंदे से परामर्श लेने के लिए विवश होता होगा–इकबाल के शब्दों में–

'खुदी को कर बुलंद इतना हर तकदीर से पहले
खुदा बुंदे से खुद पूछे, बता तेरी रजा क्या हैं?'[13]

संदर्भ संकेत–

1 से 13) इकबाल और उनकी शायरी– सं. प्रकाश पंडित पृ. 31,5,7,10,68,10,32,32,60,51,21,22,27 ।